पंचम अध्याय

''सुशीला टाकभौरे की कहानियों का शिल्पगत अध्ययन''

सुशीला टाकभौरे की कहानियों का शिल्पगत अध्ययन

इसके पूर्व अध्यायों में सुशीला जी की कहानियों का वस्तुतत्त्व तथा उनकी कहानियों में चित्रित समस्याओं को देखा गया है। किसी भी रचनाकार की सफलता जहाँ एक ओर उसके द्वारा चुने गए कथ्य की विशेषताओं पर निर्भर करती है वहाँ दूसरी ओर उसके शिल्प-संयोजन को भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि उपन्यास, कहानी, नाटक जैसी अनेक विधाओं के अपने-अपने शिल्पगत वैशिष्ट्य होते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि किसी एक विधा में सिद्धहस्त रचनाकार दूसरी विधा में उतना सफल हो। यह सफलता या असफलता प्राय: शिल्पगत भेद से ही उत्पन्न होती है। ऐसे कई रचनाकार हैं, जो कहानी या उपन्यास जितना अच्छा लिख सकते हैं, उतनी अन्य विधा नहीं। उनकी कहानियों की अलगता को पहचानने के लिए हमें उनकी कहानियों का शिल्पगत अध्ययन करना चाहिए। लेकिन इससे पहले शिल्प का स्वरूप क्या है ? शिल्प की अनिवार्यता आदि बातों को देखना आवश्यक है।

5.1 शिल्प-स्वरूप -

शिल्प-विधि अंग्रेजी के टेकनीक (Technique) शब्द का हिंदी रूप है। इस शब्द का संबंध 'किसी भी कृति की रचना-पद्धति' से है। हिंदी में इसके लिए कई शब्दों का प्रयोग होता है, जैसे - शिल्प-विधि, शिल्प-विधान आदि। वैसे तो इस शब्द के लिए अंग्रेजी भाषा में पर्याप्त शब्द उपलब्ध होते हैं, जैसे - टेकनीक, आर्ट एक्सप्रेशन, क्राफ्ट आदि। परंतु इन सभी शब्दों से अंग्रेजी का 'टेकनीक' शब्द अधिक योग्य प्रतीत होता है, क्योंकि 'टेकनीक' या शिल्प-विधि का शाब्दिक अर्थ - 'किसी चीज के बनाने या रचने का ढंग' अथवा 'तरीका' होता है। किसी वस्तु के रचने की जो-जो विधियाँ अथवा प्रक्रियाएँ होती हैं उनके एकत्रीकरण को ही हम शिल्प-विधि के नाम से जानते हैं। डॉ. पांडुरंग पाटील जी का मंतव्य है - " परंपरागत रूपाकारों से मुक्त होने की ललक, नवोन्मेषशालिनी शक्ति निजी स्वभाव, संस्कार, रुचि एवं अध्ययन आदि कारणों से ही रचनाकार परवर्तित विषयों को

सुचारू रूप से निर्वाह करने में प्रयत्नशील रहता है। युग में परिस्थितियों के साथ तादात्म्य रखते हुए शिल्प-संबंधी नए-नए प्रयोग होते रहते हैं। युग-परिवर्तन के साथ-साथ जीवन-मूल्यों में भी बदलाव आए, जीवन-विषयक धारणाएँ भी बदल गई। इस परिवर्तित जीवन-सत्य की उचित अभिव्यक्ति के लिए भी रचनाकार को नई शिल्प-विधियों का आश्रय लेना पड़ा।''[1]

इस आधार पर शिल्प-विधि को हम इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं - शिल्प-विधि शैली से ज्यादा व्यापक एक ऐसा उपादान है, जिसके द्वारा रचनाकार अपनी भावनाओं को किसी भी विशेष ढंग से व्यक्त कर पाता है। अर्थात् शिल्प-विधि का मतलब है - हाथ से वस्तु बनाने की पद्धति। शब्द रचना के आधार पर शिल्प का तात्पर्य हस्त-कौशल, कारीगरी या विधि से लिया जाता है। इसी कारण शिल्प-विधि के अंतर्गत उस कला-कृति की निर्मिति में सहायक होनेवाले सभी तत्त्व आ जाते हैं। इसका संबंध साहित्य की रूप-योजना से है। रूप-योजना कथ्य को अधिकाधिक प्रभावी बनाने में ही सार्थक होती हैं। अर्थात् साहित्य निर्माण में शिल्प-सौष्ठव की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

5.2 *शिल्प संबंधी कुछ विद्वानों के विचार -*

शिल्प के महत्त्व को देख लिया, परंतु इसके संबंध में अन्य विद्वान क्या सोचते हैं, यह देखना भी आवश्यक है। शिल्प-विधि और रचना-विधि को अनेक विद्वानों ने एक ही अर्थ में ले लिया है।

प्रसिद्ध विद्वान जैनेंद्र कुमार जी मानते हैं - ''रचना पद्धति का अपना कोई निश्चित, रूढ़ अथवा परंपरागत रूप नहीं होता। यह एक गतिशील प्रक्रिया है, जो युग, समय की माँग और लेखक की रुचि के अनुसार परिवर्तित होती है। साहित्य की आत्मा भले ही एक ओर निरंतर रहे, उसका रूप समस्यानुसार बदलता रहता है।''[2]

इस प्रकार के विचार डॉ. प्रतापनारायण टंडन जी ने भी प्रस्तुत किए हैं - ''वास्तव में शिल्प-विकास में वह प्रयोग ही अपना योग दे सकता है, जो अन्य अनेक गुणों के साथ ही यथार्थ में अपने युग का प्रतिनिधित्व कर सकने की सामर्थ्य रखता है।''[3]

डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त इसी बात का समर्थन करते हुए अपना मत प्रकट करते हैं- ''शिल्प ही वही माध्यम है, जिससे उपन्यासकार अपने विषय का अनुसंधान और विकास करता है, उसे मूर्त रूप देता है, अर्थबोध कराता है और अंततोगत्वा उसका मूल्यांकन करता है। शिल्प के माध्यम से ही वह अनुभवों को सम्यक कलात्मक अभिव्यक्ति देने में समर्थ होता है।''[4]

इन सभी के मतों को देखा जाए तो लेखक अपनी प्रत्येक कृति में अपनी वैचारिक दृष्टि को निर्धारित करने के लिए कथावस्तु, घटनाएँ, पात्र, संवाद, देश-काल, भाषा शैली आदि विभिन्न तत्त्वों का सहारा लेता है। इन सभी तत्त्वों को मूर्त रूप देने के लिए महत्त्वपूर्ण तत्त्व है - भाषा। वास्तव में पात्रों, परिस्थितियों एवं वातावरण की विश्वसनीयता एवं यथार्थता तभी प्रतिष्ठित की जा सकती है, जब इन सबके अनुकूल भाषा का प्रयोग किया गया हो। अतः भाषा शैली को ही प्रस्तुति-शिल्प कहा जाता है। सारांशतः 'टेकनीक' या 'शिल्पविधि' का अर्थ है - वह विधि या तरीका, जिसके द्वारा रचनागत लक्ष्य की पूर्ति की जाती है। शिल्प रचनाकार की प्रतिभा, सृजनशील कल्पना और अविराम साधना का परिणाम होता है, जिसके द्वारा वह अपने रचनागत लक्ष्य को प्राप्त करता है।

5.3 शिल्प की अनिवार्यता -

साहित्य में शिल्प की अत्यंत आवश्यकता होती है। यह रूप और अरूप के बीच का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। जब तक साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति की आवश्यकता बनी रहेगी, तब तक अभिव्यक्ति के प्रकार के रूप में शिल्प का महत्त्व भी बना रहेगा। इस दृष्टि से प्रत्येक रचनाकार को शिल्प का आश्रय लेना ही पड़ता है। साहित्य के अंतर्गत अभिव्यक्ति के अनेक प्रयास किए गए हैं। इससे साहित्य के कला-रूपों को जन्म मिला है। इसी के परिणामस्वरूप शिल्पगत परिवर्तन होता है और आगे भी होता रहेगा, प्रत्येक महान कलाकार के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने फार्म (रूप) की सर्जना स्वयं करें। इसकी सफलता और असफलता लेखक की प्रतिभा पर निर्भर होती है।

प्रत्येक रचनाकार की प्रतिभा एक-दूसरे से भिन्न होती है। इसी के आधार पर उसके शिल्प में भी अंतर पड़ता है क्योंकि प्रत्येक रचनाकार अपने उद्देश्य की सफलता के लिए अपने साहित्य के अनुकूल शिल्प का संधान करता है। इसी कारण पाठक महाकाव्य, खंड़काव्य,

मुक्तकाव्य, गीतकाव्य, आख्यान, नाटक, एकांकी, कहानी, उपन्यास आदि के बीच कौन-सा अंतर है, समझ जाते हैं। इसी कारण हम पाते हैं कि साहित्य के प्रकारों का निर्धारण शिल्प के आधार पर ही होता है।

शिल्प पाठकों की रुचि के अनुसार साहित्य-चुनाव में सहायक होता है। इसके साथ ही अपनी शिल्पगत विशेषताओं के आधार पर उसे स्थायित्व भी प्रदान करता है। यही आकर्षण पाठक को, किसी भी रचना को आरंभ से लेकर अंत तक पढ़ने के लिए विवश कर देता है।

इन सभी बातों से साहित्य में शिल्प-विधि की अनिवार्यता स्पष्ट हो जाती है, परंतु साहित्यकार के लिए यह भी आवश्यक है कि उसे शिल्प का अति-आग्रह टालना चाहिए क्योंकि शिल्प की अति रचनाकार की रचना को असफल बना देती है। प्रत्येक रचनाकार के लिए यह आवश्यक है कि वह वस्तु और शिल्प के बीच संतुलन बनाए रखें। इन दोनों का असंतुलन रचना को क्षति पहुँचाता है। जहाँ तक साहित्यकार अपने विषय के औचित्य को क्षति नहीं पहुँचाता, वहीं तक शिल्प के प्रति उसका आग्रह स्वीकार्य है। जब भी कोई रचनाकार अपने विषय के प्रति उचित न्याय और शिल्प-योजना करता है, तभी वह रचना सफल सिद्ध होती है।

5.4 सुशीला जी की कहानियों की शिल्प-विधि -

इनकी कहानियाँ दलित समाज जीवन का चित्रण करनेवाली कहानियाँ हैं। साथ ही उनकी कहानियाँ नारी के अंतर्द्वंद्व का जीवंत दस्तावेज रही है। लगातार, संतुलित गति से लिखनेवाली सुशीला जी अपने लेखन से अपने आपको असंपृक्त कर लेने का रचना-कौशल भी रखती है। ऊपर से देखने में सहज-सी दिखती उनकी कहानियों में विद्रोह व्याप्त है और नारी के अंतर्मन की वेदना भी छिपी हुई है।

सुशीला जी की कहानियों की भाषा एवं शिल्प पर प्रकाश डाला जाए तो उनमें नारी मन की व्यथा और दलितों में हो रहा बदलाव नजर आता है। उनकी कहानियाँ अपनी भाषा व शिल्प में विशेष दर्जा पाने के काबिल हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुशीला जी की कहानियाँ भले ही सामान्य व सहज लगती हैं, परंतु अंदर से ये कहानियाँ अत्यंत मुखरित कर देनेवाली हैं।

सुशीला जी की कहानियों का शिल्पगत अध्ययन करते समय कहानी के प्रमुख तत्त्वों को देखना आवश्यक है। विचारकों ने रचना की दृष्टि से कहानी के प्रमुख तत्त्व-कथावस्तु, पात्र, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देश-काल तथा वातावरण, भाषा शैली और उद्देश्य माने हैं। सुशीला जी की कहानियों का शिल्पगत अध्ययन करते समय उन तत्त्वों को आधार रूप में स्वीकार करना उपयोगी साबित हो सकता है।

5.4.1 कथावस्तु -

कथावस्तु कहानी की रीढ़ है, अर्थात् कथा कहानी का मुख्य आधार है। उसी पर कहानी का विस्तार निर्भर होता है। अत: आवश्यक है कि कथावस्तु का चयन, रचना आकर्षक होनी चाहिए। उसमें जीवन के किसी एक ही परंतु मार्मिक या महत्त्वपूर्ण पक्ष का उद्घाटन होना चाहिए। इसलिए आवश्यक है कि घटना प्रभावोत्पादक हो। कहानी की वर्णित घटना या वस्तु उद्घाटित होने के बाद बड़ी तीव्रता से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती है। अत: कथा में एकता की अन्विति होनी चाहिए। कहानी के क्रमिक विकास की दृष्टि से उसकी चार विकासावस्थाएँ मानी जाती हैं -

5.4.1.1 प्रस्तावना -

इसमें अति संक्षेप में पात्र या परिस्थिति का परिचय होता है। कभी वातावरण का भी संक्षिप्त परिचय होता है। यह प्रारंभिक अवस्था प्राय: वार्तालाप या रोचक वर्णन से प्रारंभ होती है।

5.4.1.2 मुख्यांश -

यह कहानी की दूसरी अवस्था है। कहानी में संघर्ष आवश्यक होता है, जिसका प्रारंभ यहाँ से होता है। मुख्यांश में घटनाओं का उत्थान होने लगता है। वे गतिशील बनती हैं। स्थिति एवं चरित्र के अनुकूल संघर्ष का विकास यहाँ दिखाई देता है।

5.4.1.3 चरमसीमा -

यह कहानी की तीसरी अवस्था है। इसमें पाठकों की उत्सुकता और संघर्ष दोनों की भी चरमसीमा होती है। यहाँ संघर्ष अंतिम अवस्था में सीमा को स्पर्श करता है या चरमसीमा में परिणत होता है। कहानी की सभी घटनाएँ किसी केंद्रबिंदु की ओर अग्रेसर होती हैं।

5.4.1.4 पृष्ठभाग या परिणाम -

इस अंतिम अवस्था में कहानी का परिणाम देखा जाता है। अनपेक्षित अथवा अप्रत्यक्षित परिणाम कहानी को रोचक बना देता है। उसमें रहस्यमयता का संपूर्ण उद्‌घाटन होता है। संघर्ष की चरमावस्था के बाद परिणाम में कहानी समाप्त होती है। आज की कहानी पिटे-पिटाए अंत करनेवाली प्रणाली से आगे आ चुकी है और उसका तिरस्कार करती है। यह विकास का नया चरण ही समझा जाना चाहिए। अंत इस प्रकार होना चाहिए कि जहाँ कहानी समाप्त हो, वहाँ से एक नई कहानी पाठकों के मन में जन्में। कहानी कला की यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

5.4.2 कथानक के गुण -

कथावस्तु के कुछ महत्त्वपूर्ण गुण होते हैं, जैसे - संक्षिप्तता, मौलिकता, रोचकता, क्रमबद्‌धता, प्रवाहशीलता, विश्वसनियता, यथार्थता, उत्सुकता, सहजता, नाटकीयता और प्रभावात्मक एकता। इसी प्रकार अच्छी कहानी वही जो जीवन के यथार्थ को स्पष्ट करती है। सफल कहानी की दृष्टि से कथानक संगठन और समय परिवेश का संतुलन कहानीकार को बड़ी सावधानी से करना पड़ता है। जीवन घटनाओं का समुंदर है, आवश्यक है कि इस समुद्र से मोती निकले। उसके लिए जीवन में गहरी पैठ चाहिए। प्रभावकारी, मर्मस्पर्शी घटनाएँ होनी चाहिए।

कहानी के कथानक का एक और गुण बताते हुए डॉ. प्रतापनारायण टंडन लिखते हैं - "शिल्पगत नवीनता भी कहानी की कथावस्तु का एक विशेष गुण है। प्राचीन कथा-साहित्य में कथावस्तु के उपरांत इसी तत्त्व को महत्त्व दिया जाता था। आधुनिक कहानी में यद्‌यपि चरित्र-चित्रण का तात्त्विक महत्त्व बढ़ गया है, परंतु फिर भी शिल्प तत्त्व को प्राथमिकता दी जाती है।"[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कथावस्तु का कहानी के मुख्य तत्त्व के रूप में महत्त्व होने के साथ ही कहानी की रचना का आधार होने के कारण इसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है।

इस दृष्टि से जब हम सुशीला जी की कहानियों के बारे में विचार करते हैं तो पाया जाता है कि सुशीला जी की कहानियाँ शिल्पविधि का पूर्ण निर्वाह करती हैं। उनकी 'सारंग तेरी याद में', 'नयी राह की खोज' कहानियों को छोड़कर शेष सभी कहानियाँ आकार में छोटी हैं। घटनाओं का सूक्ष्म विश्लेषण चरित्रों के माध्यम से केंद्रीय विचार को पाठकों तक पहुँचा जाना आदि के कारण उनके कहानियों की कथावस्तु समग्रता प्राप्त करती है। संगठन कौशल के कारण उनकी कहानियाँ अत्यंत स्वाभाविक प्रतीत होती हैं। उनकी कुछ कहानियाँ आत्मकथात्मक हैं, कुछ कहानियों में प्रतीक-योजना भी सुंदर बनाई है, जैसे- 'सारंग तेरी याद में', 'त्रिशूल' आदि कहानियों में सुंदर प्रतीकों की योजना की है। दोनों कहानियाँ पूरी तरह प्रतीकात्मक हैं। सुशीला जी ने कहानी-संगहों के आरंभ में भूमिका के रूप में अपना मंतव्य प्रस्तुत किया है, जिससे यह साफ जाहिर होता है कि उनकी अनेक कहानियाँ उनके अनुभव की उपज हैं।

सुशीला जी की कहानी के आरंभ में ही इतनी उत्सुकता जागृत हो जाती है कि पाठक इन कहानियों को पढ़ने के लिए सजग हो उठता है।

जैसे - 'सारंग तेरी याद में' कहानी का आरंभ -

''सारंग तेरी याद में..... नैन हुए बेचैन...।''[6]

'दिल की लगी' कहानी का आरंभ -

''दिल लगा मेंढ़की से ..... पद्मनी का क्या काम।''[7]

यह आरंभ पढ़कर ही जो जिज्ञासाएँ पाठक के मन में उभरती हैं, उसके कारण वह उसे पूरी पढ़कर ही रहता है। इन कहानियों में कथानक के लिए आवश्यक सभी गुण समाए हुए हैं। सभी कहानियों के शीर्षक भी अत्यंत सार्थक बन गए हैं। उन्होंने शीर्षक के लिए कभी घटना, कभी पात्र तो कभी भाव का सहारा लिया है। उनकी एक ही कहानी ऐसी है जिसे पात्र का नाम दिया है और वह है - 'हमारी सेल्मा'। अन्य सभी कहानियों में भाव या घटनाओं के आधार पर कहानियों के शीर्षक दिए गए

हैं। कुल-मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि सुशीला जी की कहानियाँ कथावस्तु की दृष्टि से सफल कहानियाँ हैं।

5.4.3 पात्र चरित्र-चित्रण -

आधुनिक कहानी का मूल आधार मनोविज्ञान है और मनोविज्ञान का मूल केंद्र चरित्र है। इसलिए चरित्रों या पात्रों को कथावस्तु के सजीव संचालक कहा गया है। वैसे भी पात्र चरित्र-चित्रण कहानी का दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। कहानी का आकार लघु होता है अतः पात्रों की मितव्ययता कहानी की पहली शर्त है। पात्रों की भरमार कहानी के प्रभाव को नष्ट करती है। चरित्र के व्यक्तित्व के एक-दो अंशों का ही वहाँ चित्रण होना चाहिए। पात्रों की बाह्य वृत्तियों के साथ आंतरिक वृत्तियों का भी चित्रण होना चाहिए।

चरित्र कहानियों की घटनाओं का निर्वाह करते हैं। घटनाओं का कोई स्वतंत्र महत्त्व नहीं होता। उनका महत्त्व पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने की दृष्टि से है। कहानी के चरित्रों को कहीं भी लेखक की कठपुतली नहीं बनना चाहिए अन्यथा वे कृत्रिम लगेंगे। पात्र के माध्यम से लेखक ही अप्रत्यक्ष रूप में बोलता है। लेकिन कहीं भी उसका प्रकटीकरण नहीं होना चाहिए।

चरित्रांकन दो प्रकार से किया जाता है -

1. ***प्रत्यक्ष चित्रण -***

इसमें वर्णनात्मक ढंग से या वार्तालाप या क्रियाकलापों द्वारा चरित्र-चित्रण होता है।

2. ***संकेत द्वारा चित्रण -***

इसमें सिर्फ संकेत किया जाता है।

5.4.3.1 चरित्रांकन के लिए आवश्यक गुण -

चरित्र-चित्रण करते समय कुछ गुण आवश्यक होते हैं, जैसे - कथात्मक अनुकूलता, मौलिकता, स्वाभाविकता, सजीवता, यथार्थता, सहृदयता, अंतर्द्वंद्वात्मकता, बौद्धिकता,

कलापूर्णता आदि कहानी को न केवल चरित्र-चित्रण तत्त्व की दृष्टि से सफल बना देते हैं, वरन् उसे स्वरूपगत समग्रता भी प्रदान करते हैं। प्रमुख पात्र का कहानी के आरंभ से अंत तक उसके चारित्रिक विकास में एक प्रकार की गतिशीलता होनी आवश्यक है। कहानी के पात्रों में व्यक्तित्व, भाव, संघर्ष और मानव के शाश्वत् प्रश्नों की श्रृंखला गुंथी होनी चाहिए। ऐसे चरित्र लेखक को अमर बना देते हैं। ''चरित्र-चित्रण तभी सफल हो सकता है, जब लेखक अपनी इच्छा के अनुसार पाठकों के मन में अपेक्षित भाव पैदा कर सकें और उनके प्रभाव को स्थायी कर सकें।''[8]

सुशीला जी की कहानियों के पात्रों को इस कसौटी पर कसा गया तो यह पाया गया कि उनकी कहानियों के पात्र उनके नितांत परिचित हैं। इस तरह के व्यक्तियों की जीवन-प्रणाली को उन्होंने बहुत ही नजदीक से देखा है। यही कारण है कि इन पात्रों का चित्रण बड़ी स्वाभाविकता के साथ हुआ है। पात्रों की यही विश्वसनीयता उनकी कहानियों को चुंबकीय आकर्षण प्रदान करती है। 'सारंग तेरी याद में', 'दिल की लगी', 'व्रत और व्रती', 'धूप से भी बड़ा', 'हमारी सेल्मा', 'प्रतीक्षा' आदि कहानियों के पात्र इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण दिखाई देते हैं। सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति, आत्मीय सरोकार के कारण उनकी कहानियों की बनावट और बुनावट में विलक्षण संतुलन और आकर्षण पैदा हुआ है।

सुशीला जी की रचनाओं में निम्न वर्गों के पात्र समाए हुए हैं। उनकी सभी कहानियों में निम्नवर्गीय पात्रों का अंकन हुआ है। ये सभी पात्र अपनी वर्गीय विशेषताओं का सफल प्रतिनिधित्व करते हैं। सुशीला जी ने हर एक पात्र की विशिष्टता को उसके स्वभाव तथा उसकी मानसिकता आदि के जरिए उभारा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सुशीला जी की कहानियों में पात्रों के चरित्रों का विकास बड़ी स्वाभाविकता और सजीवता के साथ हुआ है।

5.4.4 कथोपकथन / संवाद -

कथोपकथन या संवाद योजना कहानी का तीसरा मूल उपकरण है। सैद्धांतिक दृष्टि से तो कहानी के सभी तत्त्व परस्पर आबद्ध होते हैं। परंतु व्यावहारिक दृष्टि से कथोपकथन का संबंध पात्रों से अधिक घनिष्ठ होता है। कहानी में नियोजित पात्रो के पारस्पारिक वार्तालाप के लिए ही इस तत्त्व का समावेश कहानी मे किया जाता है। पात्रों तथा कहानी के अन्य तत्त्वों की भांति ही कथोपकथन

के क्षेत्र में भी पर्याप्त विविधता मिलती है। कहानी का आकार सीमित होने के कारण उसके संवाद संक्षिप्त होने चाहिए। कुशल कहानीकार संवादों के माध्यम से कथानक का विकास करता है और कथानक को गतिशील बनाता हैं। इससे कथानक में नाटकीयता एवं सजीवता की वृद्धि तो होती है, साथ ही औपन्यासिक शिल्प का श्रेष्ठ रूप सामने उपस्थित होता है।

5.4.4.1 कथोपकथन का उद्देश्य -

1. कथोपकथन के माध्यम से कथावस्तु का विकास करना।
2. पात्रों की चारित्रिक व्याख्या करना।
3. देश-काल का बोध करना।
4. लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करना।

5.4.4.2 कथोपकथन के गुण -

कहानी की सफलता के लिए कहानी के संवादों में निम्नलिखित गुण होने आवश्यक हैं - अनुकूलता, स्वाभाविकता, रोचकता, कलात्मकता, कौतुहलता, जिज्ञासा, गतिशीलता, प्रभावोत्पादकता, संक्षिप्तता, मार्मिकता, व्यंग्यात्मकता, नाटकीयता, उपयुक्तता आदि। संवाद लंबे, तात्विक या उपदेशप्रधान नहीं होने चाहिए बल्कि उनमें प्रवाह, सजीवता एवं कुतूहलता की सृष्टि करने की सामर्थ्य होना चाहिए।

5.4.4.3 कथोपकथन का महत्त्व -

कथोपकथन या संवाद का महत्त्व डॉ. प्रतापनारायण टंडन ने इस प्रकार बताया है - ''कहानी के विविध उपकरणों में से कथावस्तु तथा पात्रयोजना तत्त्वों में पारस्परिक संतुलन की दृष्टि से कथोपकथन का विशेष महत्त्व होता है। देश-काल अथवा वातावरण एवं उद्देश्य तत्त्व की सफल संयोजना में भी कथोपकथन का योग होता है। विभिन्न गुणों से युक्त कथोपकथन संपूर्ण कहानी को प्रभावात्मकता प्रदान कर सकता है।''[9]

अर्थात डॉ. प्रतापनारायण टंडन कथावस्तु और पात्र-योजना को जोड़नेवाली कड़ी के रूप में कथोपकथन को स्वीकार करते हैं। इनके माध्यम से ही कथानक का स्वाभाविक विकास हो जाता है। उचित संवादों के जरिए ही पात्रों की स्थिति की व्याख्या की जाती है। उनकी मनोवृत्ति को उद्‌घाटित किया जाता है। इनसे ही लेखक अपने अनुभव, ज्ञान तथा निरीक्षण शक्ति का परिचय देता है।

सुशीला जी की अनेक कहानियों में संवादों का उत्कृष्ट रूप मिलता है। उनकी कहानियों में वर्णनात्मकता कम दिखाई देती है।

संक्षिप्त संवाद -

उनकी कुछ कहानियों में संक्षिप्त संवाद भी मिलते हैं -

'दिल की लगी' कहानी में -

''आं.... माँ आवाक देखती रह गई''

''रात नौ बजे ड्यूटी से आना था उसे,

सारी रात नहीं आया.....''

''फिर.....''

''सवेरे पता चला, स्टेशन पर रेल से कटा पड़ा है''

''.....''

''दोनों मय्यत साथ-साथ उठें....''

''.....''[10]

सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि सुशीला जी की कहानियों के संवाद संक्षिप्त अर्थगर्भित होने के कारण अत्यंत उत्कृष्ट बन गए हैं। उनकी कहानियों के संवाद कथावस्तु के विकास तथा चारित्रिक उद्‌घाटन में बहुत ही सफल हैं। उनके वाक्यों की संक्षिप्तता, सांकेतिकता और प्रवाहमयता से उनके संवाद प्रभावोत्पादक बन गए हैं।

5.4.5 देश-काल तथा वातावतरण -

देश-काल तथा वातावरण को कहानी के चौथे तत्त्व के रूप में माना जाता है। इसकी आयोजना कहानी को विश्वनीय एवं यथार्थात्मक पृष्ठभूमि प्रदान करने के लिए की जाती है। कहानी में चित्रित घटनाएँ तथा पात्र-योजना के अनुकूल वातावरण के चित्रण से उसकी सफलता की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। यदि किसी कहानी में इस तथ्य की उपेक्षा रहती है तो पाठक कहानी की सामाजिक, राजनीतिक तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से अपरिचित रहता है। कहानी में देश-काल तथा वातावरण तत्त्व के अंतर्गत उसकी उपर्युक्त पृष्ठभूमि के साथ ही सांस्कृतिक परंपराओं, सामाजिक आचार-विचार, रहन-सहन तथा रीति-रिवाज आदि का भी चित्रण किया जाता है। इसका नियोजन कहानी की कलात्मक पृष्ठभूमि, रचनाकाल, घटनात्मक आधार तथा पात्रों के वर्ग और स्तर के अनुकूल किया जाता है।

5.4.5.1 देश-काल तथा वातावरण के गुण -

देश-काल के गुण अथवा विशेषताओं के अंतर्गत संक्षिप्तता, वास्तविकता, आतंकारिकता, चित्रात्मकता, वर्णन की सूक्ष्मता तथा तत्वगत संतुलन आदि अत्यंत आवश्यक होते हैं।

5.4.5.2 देश-काल का महत्त्व -

कहानी में देश-काल और वातावरण के चित्रण का महत्त्व निर्विवाद है। कहानी की कथावस्तु का संबंध किसी भी विषय अथवा काल से हो, देश-काल के चित्रण से उसकी पृष्ठभूमि सुनियोजित हो जाती है। आंचलिक कहानियों को छोड़कर अन्य प्रकार की कहानियों में देश-काल का चित्रण आंशिक रूप में होता है। वर्तमान काल में कहानी में वातावरण का सर्वथा स्वाभाविक रूप चित्रित होता है। स्थानीय रंग, लोकतत्त्व तथा प्रादेशिक विशेषताओं से मुक्त वातावरण विशेष रूप से प्रभाव की सृष्टि करने नें सक्षम होता है।

इस दृष्टि से जब हम विवेच्य कहानियों को जाँचते-परखते हैं तो इस बात का पता चलता है कि कहानियों में अधिकतर निम्न वर्ग के माहौल को अंकित किया है। फिर भी उनकी कहानियों में देश-काल तथा वातावरण के लिए अधिक संभावना नहीं दिखाई देती। फिर भी उनकी

कुछ कहानियाँ ऐसी हैं, जिनमें इस तत्त्व को सफलतापूर्वक निभाया है। जैसे 'सिलिया' कहानी में गड़रिया मुहल्ले का वातावरण आदि।

इनकी कुछ ही कहानियों में वातावरण को अंकित किया है। लेकिन यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि उनके कथानक व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित हैं। इसी कारण उनकी कहानियों का चित्रण अत्यंत स्वाभाविक तथा विश्वसनीय बन पड़ा है। कभी-कभी तो उनके द्वारा किया गया चित्रण हमारी आँखों के सामने प्रस्तुत-सा हो जाता है। यही उनकी कहानियों की सफलता है।

5.4.6 भाषाशैली -

5.4.6.1 भाषा -

सामान्य रूप से भाषा भावाभिव्यंजना का माध्यम है। अभिष्ट भाव के व्यक्तिकरण के लिए भाषा का उपयुक्त होना आवश्यक है। कहानी की भाषा का दुरूह होना उसकी भावात्मक प्रवाहशीलता में बाधा उत्पन्न कर देता है। सहज, सरल, मुहावरों और कहावतों से युक्त भाषा कहानी को व्यावहारिक विश्वसनीयता प्रदान करती है। क्लिष्ट भाषा न केवल कहानी को नीरस बना देती है, बल्कि उससे कहानी की प्रभावात्मकता भी नष्ट हो जाती है। निरर्थक शब्द-योजना, शब्दाड़ंबर, दुरूह वाक्य-जाल आदि भी कहानी को भाषा तत्त्व की दृष्टि से हीन बना देते हैं।

कहानी की भाषा में प्रवाहात्मकता, भावात्मकता, प्रतीकात्मकता, आलंकारिकता तथा चित्रात्मकता आदि गुण विद्यमान मिलते हैं। काव्य की भाँति ही कहानी में भी विभिन्न प्रसंगों के अनुसार कोमल अनुभूतियों, मधुर भावनाओं एवं विशुद्ध सौंदर्य के मानवीय तथा प्रकृति चित्र भाषाबद्ध किए जाते हैं। इसलिए कहानी की भाषा में भी ये विशेषताएँ समाविष्ट हो जाती हैं। इसके साथ ही उसमें उर्दू, फारसी, अरबी, अंग्रेजी, फ्रांसिसी तथा पुर्तगाली आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग भी देखने को मिलता है।

5.4.6.2 शैली -

वर्तमान हिंदी कहानी में इस तत्त्व को विशिष्ट महत्त्व प्रदान किया जाता है। शैली का संबंध किसी एक कहानी से नहीं वरन् सब तत्त्वों से है और उसकी अच्छाई या बुराई का प्रभाव पूरी

कहानी पर पड़ता है। कला की प्रेषणीयता अर्थात् दूसरों को प्रभावित करना शैली पर ही निर्भर करता है। किसी बात के कहने या लिखने के विशेष प्रकार को शैली कहते हैं। इसका संबंध केवल शब्दों से ही नहीं है बल्कि विचार और भावों से भी है।

5.4.6. 3 शैली के गुण -

कहानी में शैली तत्त्व के समुचित नियोजन के लिए उसमें अनेक गुणों का समावेश आवश्यक होता है। सामान्य रूप से कहानी की शैली में आलंकारिकता, प्रतीकात्मकता, रोचकता, भावात्मकता, आंचलिकता तथा व्यंग्यात्मकता आदि गुणों का समावेश रचना को कलात्मक परिपूर्णता प्रदान करता है। भावाभिव्यंजना के चमत्कारिक प्रस्तुतीकरण के रूप में ही शैली का महत्त्व है।

5.4.6. 4 कहानी की प्रमुख शैलियाँ -

हिंदी कहानी के क्षेत्र में अनेक शैलियों का प्रचार है। ये शैलियाँ अपने स्वरूपगत वैविध्य के माध्यम से एक ओर कहानी की कलात्मकता, परिपक्वता का द्योतन करती हैं। साथ ही दूसरी ओर इनसे समकालीन प्रवृत्तियों का भी परिचय मिलता है। कहानी की प्रमुख शैलियाँ इस प्रकार हैं - विश्लेषणात्मक शैली, लोककथात्मक शैली, स्मृतिपरक शैली, मनोविश्लेषणात्मक शैली, स्वप्न शैली आदि।

5.4.6. 5 शैली का महत्त्व -

आधुनिक दृष्टिकोण से शैली कहानी का एक विशिष्ट उपकरण है। अनेक विचारकों ने शैली के महत्त्व का निरूपण करते हुए उसे रचनाकार के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बताया है। शैली का वैशिष्ट्य कहानी लेखक के व्यक्तित्व की मौलिक प्रतिभा संपन्नता का द्योतक होता है।

इस आधार पर हम इन कहानियों का विश्लेषण करेंगे तो पता चलता है कि कहानियों में उचित भाषा का प्रयोग किया है। भाषा के प्रयोग में अपनी कुशलता का परिचय दिया है। लेखिका चरित्रों का स्वभाव, स्वर, मनोवृत्ति आदि सशक्त प्रकटीकरण करने के लिए भाषा के विविध प्रयोग

करती हैं, जिनका प्रभाव संपूर्ण कथा को प्रभावशाली ढंग से संप्रेषित करने में होता है। गाँव, नगर, मुहल्ला, उच्च वर्ग, मध्य वर्ग, निम्न वर्ग, शालीनता, शिक्षा-दीक्षा चरित्र की बोली सब इस भाषा के प्रयोग से अनायास रूप में व्यक्त होता है। भाषा के विविध प्रयोगों के माध्यम से सुशीला जी की भाषिक समृद्धि का अध्ययन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है। असल में अपने लेखकीय व्यक्तित्व को अनेक प्रकार की भाषा में घुलाकर व्यक्त करना लेखकीय कौशल और शक्ति का प्रमाण है।

सुशीला जी की कहानियों की प्रमुख शैलियाँ आत्मकथात्मक और मनोविश्लेषणात्मक हैं। उन्होंने आत्मकथात्मक शैली में अधिकतर कहानियों की रचना की है। इसमें विविध प्रसंगों के अनुरूप व्यंग्यात्मक, भावात्मक और स्वप्न शैली का भी समावेश मिलता है। 'त्रिशूल' कहानी में स्वप्न शैली का प्रयोग मिलता है। 'सारंग तेरी याद में' कहानी में प्रतीकात्मक और मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार उनकी कहानियों में मुख्यत: आत्मकथात्मक शैली के साथ प्रतीकात्मकता, मनोवैज्ञानिकता, विश्लेषणात्मकता, विचारात्मकता आदि तत्त्वों का समावेश भी मिलता है।

5.5 सुशीला जी की कहानियों की भाषा -

कला के अनुरूप भाषा की ताजगी लेखिका की विशेषता रही है। उनकी भाषा सीधी-सादी और सरल है। उनकी भाषा में लचीलापन है, जो कथा की प्रभावोत्पादकता को अधिक सशक्त बनाता है। सुशीला जी शिल्प के स्तर पर सिद्धहस्त लेखिका हैं। उनकी कहानियों में संवेदनशील दृष्टि, गठा हुआ शिल्प, भाषा की ताजगी और चरित्र-चित्रण की प्रामाणिकता मिलती है। शिल्प की दृष्टि से उनकी भाषा उत्कृष्ट है। उन्होंने पात्रों के अनुसार भाषा का प्रयोग किया है।

5.5.1 शब्द-प्रयोग के विभिन्न रूप -

सुशीला जी की कहानियों में शब्द-प्रयोग के निम्नलिखित रूप मिलते हैं -

5.5.1.1 तत्सम् शब्द -

ब्राह्मण, ठाकुर, आत्मविश्वास, स्वाभिमान, भविष्य, मन, अस्मिता, मुक्ति, सहानुभूति, ईमानदारी, विश्वास, लक्ष्मण-रेखा आदि।

5.5.1.2 अरबी, फारसी, उर्दू शब्द -

अंजाम, रफ्तार, दरगाह, खासियत

5.5.1.3 अंग्रेजी शब्द -

एक्सप्रेस, प्लेटफार्म, रेल्वे स्टेशन, ट्रेन, बस स्टॉप, ड्रायव्हर, हॉल, बेड़रूम, मैट्रीक, ऑईल पेंट, इंजीनियर, डॉक्टर, लेम्प, पेपरमिल, ड्यूटी, ऑफिस, ट्यूमर, क्लर्क, बुकिंग, ट्रान्सफर, प्लीज, मैडम, सर्टीफिकेट, क्वार्टर, स्टाफरूम, फॅमिली प्लानिंग, ऑपरेशन, इंचार्ज, हेडमास्टर, सुपरवायजर, टुर्नामेंट, टाईप, टीचर, मिडिल स्कूल, ग्रॅज्युएट, केन्सर, युनीवर्सिटी, पिकनिक, मॉर्निंग वॉक, कोर्ट मैरेज, लव मैरेज, ट्यूबलाईट, सेड्यूलकास्ट, प्रायमरी, ट्यूशन, काम्प्युटर, प्रिंटिंग प्रेस, पोलिटेक्निक, कारपोरेशन, डिविजन, होमवर्क, एक्सीडेंट, प्लाट, एरिया, कान्वेंट स्कूल आदि।

5.5.1.4 अपभ्रंश शब्द -

बुल्लो, छौआ, सिल्लो आदि।

5.5.1.5 द्विरूक्त शब्द -

बार-बार, खड़े-खड़े, घिर्र-घिर्र, देखते-देखते, दूर-दूर, अलग-अलग, खोयी-खोयी, अपना-अपना, टिक्-टिक्, रूक-रूक, डरते-डरते, तरह-तरह, एक-एक, नन्हें-नन्हें, मंद-मंद, पास-पास, आगे-आगे, चहक-चहक, धीरे-धीरे, खर्र-खर्र, भाई-भाई, राम-राम, घर-घर, रोज-रोज, सुनते-सुनते, कभी-कभी, गोविंद-गोविंद, चुपके-चुपके, दर-दर, साफ-साफ, रात-रात, बिखर-बिखर, बदल-बदल, कड़वी-कड़वी, क्या-क्या, थोड़ा-थोड़ा, कई-कई, ठहर-ठहर, खरी-खरी आदि।

5.5.1.6 सार्थक-निरर्थक शब्द -

उबड़-खाबड़, टीका-टिप्पणी, चाल-चलन, शान-शौकत, हाव-भाव, साफ-सफाई, साफ-सुथरा, नाते-रिश्तें, बातें-मुलाकातें, उथल-पुतल, चीख-पुकार, ऊँचा-पूरा, तहस-नहस, खोज-बीज, चहल-पहल, भोले-भाले, रहन-सहन, सुझ-बुझ, भोली-भाली, आस-पास आदि।

5.5.1.7 अपशब्द -

कुत्ते की औलाद, बेवकूफ, नालायक, शुद्र, गवार, बदमाश आदि।

5.5.1.8 मुहावरें -

आँखों में बसना, कण-कण में समाना, न्यौछावर होना, तिल-तिल मरना, रोमांचित होना, चौंक जाना, मुँह मोड़ना, आर-पार होना, हिम्मत बटोरना, कद्र करना, उबार लेना, मजाक करना, बिदा करना, मुँह फूलाना, गद्‌गद् होना, हाथों-हाथ लेना, पैरों पर खड़ा होना, आग बबूला होना, पहेलियाँ बुझाना, परलोक सिधारना, फूला नहीं समाना, आहें भरना, पोर-पोर भिगना, दर-दर भटकना, मुखौटे चढ़ाना, पैर भारी होना, मूंड़ पर मूतना, शतरंज का मोहरा बनना, सीधी राह चलना, बलैया लेना आदि।

5.5.1.9 कहावतें -

1. 'दिल लगा मेंढ़की से, पद्मनी का क्या काम।'
2. 'काठ के घोड़े पर बैठना।'
3. 'काला अक्षर भैस बराबर।'
4. 'लंबी चौड़ी बातें हाँकना।'
5. 'पहले आत्मा फिर परमात्मा।'
6. 'रोटी कम खाओ मगर अपने बच्चों को पढ़ाओ।' (बंगाली)

5.5.1.10 पहेलियाँ -

'जो है, वह है नहीं, जो नहीं है वह है।' 'सारंग ले सारंग चली..... कर सारंग की ओट.... सारंग झीना देखकर कर गयो सारंग चोट....।'

5.5.1.11 पद्य की पंक्तियाँ -

'बनवारी रे - जीने का सहारा तेरा नाम रे.....', 'सारंग तेरी याद में..... नैन हुए बेचैन।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुशीला जी कहानियों में भाषा के विविधांगी रूपों को प्रस्तुत किया है। सुशीला जी की विशेषता है कि उन्होंने औचित्य के साथ भाषा के ये प्रयोग किए हैं, जिसके कारण भाषा की दृष्टि से ये कहानियाँ पूरी तरह सफल हो गई हैं।

शैली की दृष्टि से देखा जाए तो सुशीला जी की कहानियों में शैली के प्रकारों में से आत्मकथात्मक, संवादात्मक, स्मृतिपरक, स्वप्नपरक, व्यंग्यात्मक, प्रतीकात्मक और मनोवैज्ञानिक आदि कई शैलियों का प्रयोग किया गया है।

5.5.1.12 आत्मकथात्मक शैली -

1. ''रोमा पुनः सिसक उठी और फिर कातर स्वर में कहने लगी - दुःख के बादल खुशियों के सूरज को छिपा लेते हैं ..... बस ऐसे ही, यहीं गम की बदली मेरे जीवन में छा गई है, बरसों से। सुबह हो या शाम : जब अपना सूरज अपनी आँखों को दिखाई न दे तब कैसा दिन और कैसी धूप! मेरे जीवन में, दिन हो या रात एक जैसा अंधेरा छा गया है।''[11]
2. ''मैं समझने लगी थी कि ये लोग इससे आगे सोच ही नहीं सकते हैं। बेटी का जन्म होते ही उसकी पढ़ाई की नहीं, शादी की चिंता की जाती थी - शादी और बच्चे जैसे जीवन का लक्ष्य केवल यहीं रहता था। इस तरह यह समाज आगे बढ़ नहीं पाता है। इस पारंपारिक विचारधारा को तोड़ना जरूरी है तभी मेरा समाज नए विचारों को अपना सकेगा। मेरा यह सपना है कि मैं अपने समाज में परिवर्तन लाने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करती रहूँ। समाज की महिलाओं में जागरूकता लाने का प्रयत्न करूँ और समाज की भोली-भाली लड़कियों को बचपन से ही समझदार बनने की शिक्षा के प्रति जिज्ञासु रहने की और आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा देती रहूँ- यही मेरी अभिलाषा है।''[12]
3. ''मुझे लगता है कि किसी भी बात को यूँ ही कह देना बड़ा सरल होता है। मगर उसे निबाहना

या ऐसी स्थिति का सामना करना कठिन होता है। आज मैं जिस स्थिति का सामना कर रही हूँ वह क्या कम कठिन है ? यह स्थिति किसी भी स्त्री साहित्यकार के सामने आ सकती है। अथवा इससे मिलती-जुलती कोई दूसरी परिस्थिति भी हो सकती है। तब बेचारी लेखिका क्या करेगी ? अपने मन को मोड़ लेगी ? अपनी भावनाओं को तोड़ देगी ? साहित्य-सृजन के उज्जवल भविष्य का नाता सीमाओं से घिरे अंधकार से जोड़ लेगी ? क्या उसके साथ यह अन्याय नहीं होगा ?

आज मैं स्वयं इस स्थिति का सामना कर रही हूँ, दुविधा में हूँ, अपनी बात किससे कहूँ और कैसे कहूँ ?

मैंने बहुत हिम्मत के साथ डरते-डरते वह प्रेमपत्र पति के सामने रख दिया है, मन-ही-मन डर रही हूँ कि अब क्या होगा ? मैं पत्र के साथ पति की प्रत्येक प्रतिक्रिया को बारीकी से देखते हुए उनके मन के भावों को जानने का प्रयत्न कर रही हूँ।''[13]

5.5.1.13 स्मृतिपरक शैली -

''अछूत कन्या के साथ विवाह के विज्ञापन के साथ सिलिया की आँखों में वह घटना बार-बार तैर जाती थी, जब प्यास से उसका कंठ सूख रहा था और उसकी ओर बढ़ता हुआ पानी का गिलास एकाएक केवल इसलिए वापिस हो गया कि वह अछूत थी, हिंदू होते हुए भी हिंदू नहीं थी। प्यास ने उसे इतना विचलित नहीं किया था जितना इस अपमानजनक व्यवहार ने - 'कौन जात है ?' पूछा गया यह सवाल उसके कानों में निरंतर हथोड़े मारता था। कुत्ता, बिल्ली उस घर में बे-रोकटोक आ-जा रहे थे पर उसे दहलीज पर ही हाथ के इशारे से रोक दिया गया था। इस व्यवस्था को मिटाने के लिए कुछ भी नहीं हो सकता ? सोच-सोचकर उसकी मस्तिष्क की नसें फड़कने लगती थी।''[14]

5.5.1.14 व्यंग्यात्मक शैली -

''पेट में चूहे कूद रहे थे। इन चूहों के पीछे बिल्ली और उन बिल्लियों के पीछे कुत्ते दौड़ने लगे थे। मुझे डर लगने लगा-कहीं ऐसा न हो कि कोई किसी की पकड़ में आ जाए और नामुमकिन हत्या हो जाए। अगर किसी की शामत आ ही गई तो बचाने के लिए और हत्या दोष से बचने के लिए बस एक ही उपाय था कि गरम-गरम हलवा यानि प्रसाद शीघ्र ही खा लिया जाये।''[15]

5.5.1.15 मनोविश्लेषणात्मक शैली -

''राजकुमारी की आँखों में एक मुखड़ा बस गया है। वह राजकुमार के मुखड़े को रात-दिन अपनी कल्पनाओं में निहारती रहती है। अपनी कल्पनाओं में वह उसके प्रेमालाप के भावों को देखती है। कल्पनाओं में उसके प्रेम को पाकर वह विभोर हो जाती है और खोयी-खोयी रहती है। उसकी आँखों से रातों की नींद उड़ गई है। वह कई-कई रात सो नहीं पाती है। जागती आँखों में काल्पनिक मधुर स्वप्न देखते हुए उसकी पूरी रात बीत जाती है और देखते-देखते सुबह हो जाती है। सुबह से शाम तक भी एक अजब मदहोशी में रहती है। जागते हुए भी जागी हुई नहीं और सोते हुए भी सोई हुई नहीं, अजीब मानसिक स्थिति हो गई है।''[16]

5.5.1.16 स्वप्न शैली -

''पार्वती लकड़ी के जलते हुए बड़े-बड़े गोल टुकड़े शंकर के सामने डाल रही थी। शंकर पार्वती के पास आना चाहते थे। वह शंकर से दूर रहना चाहती थी। शंकर के हाथ में सिर से ऊँचा त्रिशूल था। पूर्ण आवेग हौसले व इच्छशक्ति के साथ शंकर पार्वती के निकट आने का निश्चय भरा प्रयास कर रहे थे। भयभीत पार्वती ऐसा नहीं होने देना चाहती। वह मार्ग में व्यवधान उपस्थित कर रही थी। पार्वती को लगा कि त्रिशूलधारी व्यक्ति वही है जिसे उसने कुछ देर पहले ट्रक में ड्रायव्हर की सीट पर बैठा देखा था। लेकिन तब उसका रूप शांत, सौम्य, प्रेम के प्रति आग्रहपूर्ण और मानवीय था किंतु अब तो यह साक्षात् रूद्र का अवतार दिखाई दे रहा है। अब शिव और पार्वती एक ही कोठरी में आमने-सामने खड़े हैं। दरवाजे खुले हैं। पार्वती ने पास खड़ी मोहिनी को अपने से सटाकर चिपका रखा है। शिव को रोकने के लिए पार्वती न जाने कहाँ से जलते हुए लकड़ी के बड़े-बड़े टुकड़े उठाकर अपने व शिव के बीच में डाल रही है। जलती आग का एक व्यवधान उपस्थित कर रही है और न जाने क्या-क्या प्रयास कर रही है जो उसे अब ठीक से याद नहीं आ रहा है, मगर इतना याद है कि वह साथ ही साथ चीखती भी जा रही है। किसी को सहायता के लिए पुकार रही है। पर उसकी आवाज गले से बाहर नहीं निकल रही है।''[17]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुशीला जी ने अनेकानेक शैलियों के प्रयोग से अपने साहित्य को समृद्ध बनाया है। इस प्रकार भाषाशैली की दृष्टि से सुशीला जी की कहानियाँ पूरी तरह से सफल हो गई हैं।

5.6 उद्देश्य -

हर एक कहानीकार का कहानी लिखने के पीछे कोई-न-कोई उद्देश्य तो होता ही है। प्राचीन काल में सिर्फ मनोरंजन के लिए कहानियाँ लिखी जाती थी। लेकिन अब इतना ही उद्देश्य नहीं होता है। आजकल कहानियाँ लिखने के पीछे समस्या-चित्रण, लोगों में जागृति निर्माण करना जैसे कई उद्देश्य हो सकते हैं। मनोरंजन, उपदेशात्मकता, कौतूहल सृष्टि, हास्य सृष्टि, समस्या चित्रण, मनोविज्ञान आदि कई उद्देश्य कहानी लिखने के पीछे हो सकते हैं। बिना उद्देश्य तो कहानी हो ही नहीं सकती। कहानी का जीवन-दर्शन या उद्देश्य एक बीज का कार्य करता है। बीज जितना शक्तिशाली हो वृक्ष उतना ही मजबूत बनता है। उसी तरह जीवन-दर्शन या उद्देश्य का महत्त्व कहानी में है।

सुशीला जी की कहानियाँ भी सिर्फ मनोरंजन मात्र के लिए नहीं लिखी गई हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में दलित और नारी-समस्याओं को अधिक मात्रा में उठाया है। दलित और नारी के उन समस्याओं के प्रति आकृष्ट करना उनका उद्देश्य रहा है। इसके साथ ही नारी शिक्षा और नारी स्वतंत्रता की वे आग्रही हैं। उनकी कहानियों का उद्देश्य यह है कि समाज को पता चले कि चुप रहनेवाली सहनशील नारी के मन में कितनी वेदना होती है। अपनी सामाजिक स्थिति के साथ पारिवारिक समरसता बनाए रखने में उसे कितनी बिकट स्थितियों और संघर्षों का सामना करना पड़ता है। नारी को समता सम्मान का अधिकार मिले और सामाजिक व्यावहारिक जीवन में स्त्री-पुरूष कंधे-से-कंधा मिलाकर बराबरी से चलें, यही उनके लेखन का उद्देश्य है। साथ ही दलित समाज की समस्याओं को समाज के समक्ष रखकर समाज में समानता की भावना निर्माण करना उनका प्रमुख उद्देश्य है।

इस प्रकार अपने उद्देश्य को अपने पाठकों तक पहुँचाने में सुशीला जी सफल हुई हैं।

निष्कर्ष -

निष्कर्ष रूप में हम देख सकते हैं कि आधुनिक काल की दलित महिला कहानीकारों में महत्त्वपूर्ण स्थान पानेवाली सुशीला जी हिंदी कहानी के क्षेत्र में अपनी साहित्यिक विशेषताओं के कारण धीरे-धीरे प्रसिद्धि पा रही हैं। उनकी कहानियाँ मानवीय धरातल पर यथार्थ रूप में प्रस्तुत कहानियाँ हैं। इन कहानियों में कथ्य की दृष्टि से साम्य पाया जाता है। इन कहानियों में कथावस्तु के सभी नियमों का पालन सफलतापूर्वक किया गया है। इसी कारण वस्तुतत्त्व की दृष्टि से ये कहानियाँ सफल हैं।

चरित्र-चित्रण के विविध प्रयोग सुशीला जी ने अपनी कहानियों में किए हैं। अपने चरित्रों के माध्यम से कभी नए आदर्श सामने रखकर उनसे लोगों को प्रेरणा देना उनका उद्देश्य रहा है। संवाद-योजना काफी सुंदर है। उन्होंने इन संवादों के जरिए कभी कथानक को गतिशील बनाया है तो कभी पात्रों का चरित्र-चित्रण करने के लिए संवादों की सहायता ली है। देशकाल वातावरण तत्त्व का कम निर्वाह किया है। इसके लिए उनकी कहानियों में अधिक जगह नहीं है।

भाषा शैली की दृष्टि से देखा जाए तो सुशीला जी की कहानियाँ अधिक सफल बन चुकी हैं। भाषा के विभिन्न प्रयोगों से उनकी कहानियों में निखार आया है। उन्होंने शैली के अनेक रूपों को अपनी कहानियों के लिए अपनाया है। उन्होंने अपनी कहानियों में सुंदर प्रतीकों का प्रयोग किया है। इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि भाषा शैली की दृष्टि से उनकी कहानियाँ सफल हो चुकी हैं। उन्होंने अनेकानेक उद्देश्यों को अपनी कहानियों में प्रयुक्त किया है।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि कहानी के सभी तत्त्वों का सुशीला जी की कहानियों में सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है। इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि सुशीला जी की कहानियों का शिल्प अत्यंत सुंदर रहा है। शिल्प की दृष्टि से उनकी कहानियाँ श्रेष्ठ हैं। सुंदर बिंब योजना, समृद्ध भाषा, कलात्मक शैली और उद्देश्यपूर्ण सफल पात्र-योजना स्पष्ट दिखाई देती हैं। इसी कारण उनकी कहानियाँ प्रभावोत्पादक और आकर्षक बन गई हैं।

संदर्भ सूची

1. डॉ. पांडुरंग पाटील, देवेश ठाकुर और उनका उपन्यास साहित्य, पृ. 192
2. जैनेंद्रकुमार, साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ. 368
3. डॉ. प्रतापनारायण टंडन, हिंदी उपन्यास में कथाशिल्प का विकास, पृ. 346
4. डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त, उपन्यास : स्वरूप संरचना तथा शिल्प, पृ. 117
5. डॉ. प्रतापनारायण टंडन, हिंदी कहानी कला, पृ. 267
6. डॉ. सुशीला टाकभौरे, अनुभूति के घेरे, पृ. 26
7. वही, पृ. 45
8. डॉ. सुरेश बाबर, भीष्म सहानी के साहित्य का अनुशीलन, पृ. 185
9. डॉ. प्रतापनारायण टंडन, हिंदी कहानी कला, पृ. 359
10. डॉ. सुशीला टाकभौरे, अनुभूति के घेरे, पृ. 48
11. डॉ. सुशीला टाकभौरे, टूटता वहम, पृ. 94
12. वही, पृ. 32
13. डॉ. सुशीला टाकभौरे, अनुभूति के घेरे, पृ. 71
14. डॉ. सुशीला टाकभौरे, टूटता वहम, पृ. 60
15. वही, पृ. 49
16. डॉ. सुशीला टाकभौरे, अनुभूति के घेरे, पृ. 40
17. वही, पृ. 20